

श्रीमद्भगवद्गीता एवं कर्मयोग

सारांश

परमात्मा ने अत्यन्त दुस्तर भवार्णव को पार कर अपने परम कल्याण की प्राप्ति हेतु मनुष्यों के लिये कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग के रूप में तीन प्रकार के साधनों का अनुष्ठान करनी की विधि बतायी है। श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम छः अध्याय कर्म को अर्पित है, अन्य छः भक्ति और अन्य छः ज्ञान चर्चा से सम्पन्न है। कर्म प्राथमिक है, कर्म की अवहेलना कर भक्ति और ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया जा सकता। आध्यात्मिक साधनाओं का एकमेव लक्ष्य होता है, मोक्ष की प्राप्ति करना। इसके लिये योग की शरण में गए बिना काम नहीं चलता। इसके लिये कर्म के द्वार से ही साधक को प्रवेश करना होता है।

मुख्य शब्द : श्रीमद्भगवद्गीता एवं कर्मयोग

प्रस्तावना

आध्यात्मिक साधन का लक्ष्य सदैव ऐसा आन्तरिक संतुलन प्राप्त करना रहा है जहाँ वैयक्तिक चेतना विश्व से एकाकार हो जाती है। साधना का परिणाम यह होता है कि मानव को अजस्र आनन्द और शान्ति की उपलब्धि होती है, जिसके कारण बाह्य घटनाओं और प्रभावों से मानव का तन और मन आंदोलित नहीं हो पाता। तन और मन का यह स्थैर्य ही समाधि कहा जाता है। यह किसी साधक की मानवीय चेतना की अन्यतम उपलब्धि है। इसे ही पराचैतन्य अथवा स्थितप्रज्ञ की स्थिति कहा जा सकता है जिस स्थिति में साधक एक प्रकार से ऊपर नियंत्रण पा लेता है क्योंकि वह चित्त के विभिन्न स्तरों के पार चला जाता है।

पुरातनकाल से चित्त की इस दशा को प्राप्त करने के विभिन्न अनुशासन प्रयोग में लाये जाते रहे हैं, जिन्हें उपासना अथवा साधना की संज्ञा से अभिहित किया जाता रहा है। साधना की इन प्रणालियों में पाँच अनुशासन ख्यातनाम हैं, जिन्हें राजयोग, कर्मयोग, हठयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग के रूप में जाना जाता है।

अध्ययन का उद्देश्य

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्मयोग का उपदेश ब्रह्मबोध के लिये दिया था। अतः भगवद्गीता की विभिन्न प्रवृत्तियों को एकत्र करने के बाद यह निष्कर्ष निकलता है कि गीता का उपदेश जीवन की समस्याओं को हल करना और न्यायोचित आचरण को प्रेरणा देना था। प्रत्यक्ष रूप में यह एक नैतिक ग्रन्थ है, यह एक योगशास्त्र है। भगवद्गीता हमें एक सर्वोच्च योग अर्थात् ईश्वर के साथ संयोग की ओर ले जाता है। गीता व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ध्यान में रखकर तथा अधिकारी भेद को दृष्टि में रखकर कर्म, भक्ति तथा ज्ञान का विवेचन करती है। साथ ही त्रिगुणता के आधार पर उक्त तीनों की व्याख्या करते हुए व्यक्ति के व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से उदान्त बनाने का प्रयास करती है, जिससे व्यक्ति अनेक जन्मों के सतत् प्रयास से उस चित्तसत्त्व या विवेकज्ञान को प्राप्त कर सके और जिसे व्यक्ति अपने वर्णाश्रम धर्मों के सम्पादन के साथ-साथ कर सकता है।

इस तरह गीता का कर्मयोग, भोग में मुक्ति का मार्ग दिखलाती है।

विषय प्रवेश

समत्व और प्रज्ञत्व को प्राप्त करने की शिक्षा गीता में कर्मयोग के रूप में दी गयी है। अज्ञानी ऐसा समझते हैं कि आशक्ति से रहित होकर कोई काम किया ही नहीं जा सकता।

सत्त्व, रज, तम, तीनों गुणों के आधार पर कर्म भी तीन प्रकार के बताए गए हैं – सात्विक, राजसिक और तामसिक। जो कर्मशास्त्र विधि से नियत किया हुआ और कर्तापन के अभिमान से रहित हो, फल न चाहने वाले पुरुष द्वारा बिना राग-द्वेष के किया गया है, उसे सात्विक कर्म कहा जाता है जो कर्म परिश्रम पूर्वक किया जाता है, भोगों को चाहना और अहंकार वश, वह राजस कर्म कहा



माधवी चन्द्रा

अतिथि व्याख्याता,
योग विभाग,
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय,
भोपाल, म.प्र.

जाता है और जो कर्म का परिणाम, क्षम, हिंसा और क्षमता का विचार किए बिना अज्ञानवश आरंभ किया जाता है, वह तामसकर्म कहा जाता है।

सात्विक, तामसिक व राजसी कर्म के आधार पर कर्ता भी तीन प्रकार के गिनाए गए हैं। कर्ता जो बिना किसी अहंकार के, अशक्ति से मुक्त, कार्य के सिद्ध होने और न होने के प्रति तटस्थ भाव रखते हुए धैर्य उत्साह के साथ कर्मलग्न रहता है, वह सात्विक कर्ता है, तो दूसरी ओर कर्म में आशक्ति वाला ऐसा कर्ता जो फल की इच्छा से, लोभवष, हिंसात्मक, क्रूर, हर्ष और शोक से प्रचलित है राजसीकर्ता है, तथैव ऐसा कार्यकर्ता जो अस्थिर चित्त, हठी, धोखेबाज, आलसी और दीर्घसूत्री है, किसी भी कार्य को लंबे समय तक खींचता है, तामसी कहा जाता है।

स्पष्ट है कि कर्ता का कर्म के दृष्टिकोण, संलग्न और मानसिकता में परिवर्तन धर्म की प्रकृति को प्रभावित करते हैं, क्षण-प्रतिक्षण भौतिक जगत के घात-प्रतिघात, भौतिक जगत के मन को झिंझोड़ते हैं। तदनुसार उसका स्वभाव प्रभावित होता है और इसी तरह उसका कर्म भी। वस्तुतः मन, वचन और तन से मनुष्य जो काम करता है, फिर चाहे वे शास्त्रानुकूल हो अथवा विपरीत: उसके पीछे इष्ट, अनिष्ट, मिश्रित फल वाला भाव तो रहता ही है और इस भाव परिणाम तक पहुंचाने वाले पांच कारण अधिष्ठान, कर्ता, करण, विविध प्रकार की चेष्टाएँ और दैव हैं। इन कारणों के मूल में मनुष्य का अवश कर्मवश होना ही है। गीता का स्पष्ट मत है कि जीवन में गुणों की दैवीय बसावट ने उसे खटपटिया बना रखा है। बिना कुछ किए उसका एक क्षण भी नहीं कटता। वह प्रकृति से उत्पन्न गुणों के द्वारा कर्म करने के लिए विवश है। प्रकृति सत्व, रज और तम तीन गुणों का संगठन है। इसलिए जीव असहाय कर्म से बंधा हुआ है अतः कर्म के स्वरूप का ज्ञान कर उसके अनुरूप उसे अपना स्वभाव और चरित्र निर्माण करना चाहिए। अन्ततोगत्वा मानव-जीवन का लक्ष्य परमात्म तत्व हासिल कर परमशक्ति प्राप्त करना है। यह शान्ति और परमात्म तत्व का बोध उसे कर्म से ही हो सकता है।

स्वामी विवेकानन्द का अभिमत है कि हमें 'योगमय' होकर कर्म करना चाहिए। गीता हमें कर्मयोग की शिक्षा देती है, योगमय होकर किए गए कर्म में अपरा-प्रकृति का किंचितमात्र योग नहीं होता जब भी कोई योगवत् कर्म करता है, तब उसमें कर्तापन का भाव होता ही नहीं। परिणामस्वरूप कर्म की पूर्णता अपने चरम सौष्टव पर होती है इसी को गीता गायक कृष्ण 'योगःकर्मसु कौशलम्' की विभूति से अभिहित करते हैं इसी कौशल को प्राप्त करने के लिए गीता ने सूत्र दिया है।

**'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
म कर्मफल हेतुभूर्मा ते संगोःस्त्वकर्मणि।।'**

गीता 11/47

इस श्लोक द्वारा जो सूत्र प्रकट है, वे हैं : (1) कर्मण्येवाधिकारस्ते अर्थात् तेरा कर्म पर ही अधिकार है अर्थात् कर्म करने का, श्रम का अधिकार, (2) मा फलेषु कदाचन अर्थात् फल पर तेरा अधिकार कदापि नहीं, (3) मा कर्मफल हेतुः भूः अर्थात् कर्मफल को निमित्त मत

बनाओ, कर्मफल की वासना वाले मत बनो, (4) मा ते संगः अस्तु अकर्मणि अर्थात् अक्रियता में तेरी आसक्ति न हो, अर्थात् निरलस होओ।

उपरोक्त चार सूत्र कर्मयोग को पूर्ण वाचकता प्रदान करते हैं। इनमें से एक पर भी आचरण किया जा सके तो योग की प्राप्ति हो जाती है। अतएव गीताकार अर्जुन को सीधा-साधा लगभग अनुदेश के भाव में परामर्श देते हैं - "योगस्थः कुरु कर्माणि संग त्यक्त्वा धनंजया। सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।" यह श्लोक अपने पूर्ववर्ती श्लोक के तारतम्य में ही है। "कर्म करोः कर्म में आसक्ति का त्याग करो, भाव रहना ही समत्व है और यही समत्व योग है स्पष्ट है कि 'कुरु कर्माणि' कहकर वह कर्म के अधिकार को भी वाच्य बनाते हैं। सिद्धि और असिद्धि में सम होने का तात्पर्य ही है कि फल पर तेरा अधिकार नहीं और इसलिए "मा कर्मफल हेतुः भूः।।"

निष्कर्ष

कर्म करने की यह चतुः सूत्री योजना एक ओर कर्म को अधिकार बताकर कर्तापन का भाव-हरण करती है तो दूसरी ओर "मा फलेषु कदाचन" कहकर उसके अहंकार का रक्षण कर देती है। किंचित गंभीर होकर मनन करें तो "मा कर्मफल हेतुः भूः" के द्वारा यह सूत्र फल को देवाधीन कर ईश्वरार्पण कर देता है और "मा संगः अस्तु अकर्मणि" के द्वारा "कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणः की परवशता के आलोक में निःस्वार्थ काम करने की प्रेरणा देता है। इन सूत्रों को चरण सोपान बनाकर किया गया कर्म अन्ततोगत्वा "योगः कर्मसु कौशलम्" को सार्थक करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. तिलक, बालगंगाधर, श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य, गीता प्रेस गोरखपुर, 2006
2. प्रभुपाद, स्वामी, श्रीमद्भगवद्गीता, भक्तिवेदान्त बुकट्रस्ट, 2002
3. रामसुखादास, स्वामी, भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1980
4. सान्याल, भुपेन्द्रनाथ, श्रीमद्भगवद्गीता भाग-1, 2, 3, गुरुधाम प्रकाशन गीता, 2005.
5. अरविन्द, श्री, गीता प्रबन्ध, श्री अरविन्द सोसायटी पांडिचेरी, 1954.
6. अग्रवाल, विनयकुमार, गीतोपनिषद्, पुस्तकमहल, दिल्ली, 2007.
7. ओंकारानन्द, सरस्वती. स्वामी, गीता मानस और अपरोक्षानुभूति बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, 1994.
8. प्रेम. कृष्ण, भगवद्गीता का योग, पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1984.
9. राधाकृष्णन. एस, भगवद्गीता, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 1972.
10. विवेकानन्द. स्वामी, कर्मयोग श्रीरामकृष्ण मठ, नागपुर, 2006.